IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

प्राचीन भारत में स्त्री–शिक्षा

(प्रारम्भ से बारहवीं शताब्दी ईस्वी तक)

Seema Jangir

Assistant Professor

Govt. PG College, Ambala Cantt-133001

सारांशः

स्त्री–शिक्षा की स्थिति किसी समाज/सभ्यता की उन्नति अथवा अवनति की परिचायक होती है। ऋग्वैदिक काल में स्त्री सामाजिक कुरीतियों से स्वतंत्र होकर पुरूष के समान उपनयन संस्कार तथा वैदिक शिक्षा प्राप्ति की अधिकारिणी थी। विवेच्य काल में स्त्री–शिक्षा उच्च वर्ग में ही प्रचलित थी। ऋग्वेद में घोषा, अपाला, रोमासा, लोपामुद्रा, इन्द्राणी आदि ब्रह्मवादिनी मंत्रद्रष्ट्री ऋषिकाओं का उल्लेख है। उत्तरवैदिक काल में उपनयन संस्कार से वंचित नारी ने लौकिक और पारलौकिक विषयों की शिक्षा प्राप्ति में उच्चतम कीर्तिमान स्थापित किए थे। बौद्ध काल में हीन सामाजिक स्थिति प्राप्त भिक्षुणी संघ में अनेक थेरियों का उल्लेख है। धर्म–दर्शन की अध्येता अनेक अविवाहित बौद्ध भिक्षुणियों का उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में है। जैन साहित्य में परम विदुषी स्त्रियों को गणिनी, प्रवर्तिनी, महातारा सम वरिष्ठ उपाधियां प्रदान किये जाने का विवरण है। सूत्रकाल में स्त्री को उपनयन एवं वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त था। इस काल में ब्रह्मवादिनी तथा सधोवधू स्त्री शिष्याओं का उल्लेख है। चरण, कठी, छात्री, बह्वर्ची, छात्रीशाला, आचार्या एवं स्त्री शिष्याओं की अनेक श्रेणियां पाणिनी–पतंजलि युग में स्त्री–शिक्षा की उच्च स्थिति के द्योतक हैं। स्मृतिकाल में प्रचलित सामाजिक कुरीतियों ने स्त्री–शिक्षा का प्रसार अवरुद्ध कर दिया। पति–सेवा ही आश्रित पत्नी का मुख्य धर्म था। गुप्तकाल में गृह की चहारदीवारी तक सीमित स्त्री के लिए एक कुशल गृहिणी बनना आवश्यक था। पौराणिक काल में स्त्रियों की स्थिति शूद्र के समकक्ष थी, परन्तु राजवंशीय स्त्रियों को शिक्षा–प्राप्ति के पूर्ण अवसर प्राप्त थे। चौहान वंशीय शासकों ने स्त्री–शिक्षा के निमित्त उपयुक्त वातावरण निर्मित किया था। विजयांक, संयोगिता, देवलरानी, अवंतिसुन्दरी, भारती, चित्रलेखा, कलावती, शोल भट्टारिका आदि अनेक विदुषी स्त्रियां थीं। 11–12वीं शताब्दियों में दक्षिण भारतीय स्त्रियों ने अनेक कवियों को संरक्षण प्रदान कर कन्नड़ एवं जैन साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उस काल में स्त्री–शिक्षा का प्रतिशत निम्न ही था। प्रायः स्त्री पुरुष साथ हो शिक्षा प्राप्त करते थे। उन्हें वेद, पुराण, आध्यात्म, दर्शन, मीमांसा, नैतिकता, राजनीति, शासन प्रबन्ध, सैन्य संचालन, ललित–कला, तंत्र मंत्र, रोगोपचार आदि विभिन्न विषयों की शिक्षा प्रदान की जाती थी।

मुख्य शब्दः प्राचीन, भारत, स्त्री, शिक्षा, पाठ्यक्रम

काल एवं परिस्थितियों के अनुरूप भारतीय इतिहास में स्त्री की शिक्षा और स्तर में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है।

वैदिक साहित्य सृजन में स्त्री की भूमिका :–

वैदिक साहित्य का आशय उस विपुल साहित्य से है, जिसमें ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद की संहिताएँ (मंत्र खण्ड) एवं प्रत्येक वेद के ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक तथा उपनिषद् सम्मिलित हैं। ऋग्वैदिक काल स्त्रियों की स्थिति के संबंध में भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग कहा जा सकता है, जहां नारी पर्दा–प्रथा, बाल–विवाह, दहेज–प्रथा और कन्या–वध जैसी कुरीतियों से स्वतंत्र थी। वह धार्मिक अनुष्ठानों के सम्पादन में, शिक्षा प्राप्त करने और जीवनसाथी के चयन में पुरूष के समान अधिकारिणी थी। ए. एस. अल्लेकर के अनुसार ''प्राचीन भारत में, वैदिक संस्कारों–धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने वाले प्रत्येक स्त्री–पुरूष को वैदिक शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक था।'' वैदिक साहित्य का अध्ययन करने तथा याज्ञिक अनुष्ठानों के सम्पादन का स्त्री को पूर्ण अधिकार प्राप्त था। नारी लौकिक एवं सांसारिक विषयों की शिक्षा प्राप्त करती थी। ऋग्वेद के विभिन्न मण्डलों के कुछ स्त्रोतों, मंत्रों, ऋचाओं (पद्य में लिखे गए पद) की रचना परम विदुषी स्त्री–कवयित्रियों द्वारा की गई थी। अल्तेकर महोदय के अनुसार ''ऋग्वैदिक काल में पुत्रों के समान पुत्रियों का भी उपनयन संस्कार सम्पन्न किया जाता था''। इस संस्कार के सम्पादन के पश्चात् ही व्यक्ति को वैदिक मंत्रों के उच्चारण तथा याज्ञिक अनुष्ठान सम्पादित करने का अधिकार प्राप्त होता था।[1] ऋग्वेद में अनेक प्रमाण हैं कि स्त्रियों को भी पुरूषों के समान ब्रह्मज्ञान एवं उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था।[2] पूर्णावस्था (सम्भवतः 16–17 वर्ष) में विवाह होने के कारण स्त्रियाँ सहजता से उच्चतम स्तर तक शिक्षा प्राप्त कर सकती थी। वह शिक्षा संबंधी संस्कार सम्पन्न करने एवं शिक्षा प्राप्त करने की पूर्ण अधिकारिणी थी। स्त्री ऋषियों को ऋषिकाएँ अथवा ब्रह्मवादिनियाँ कहा जाता था। ऋग्वेद में रोमासा, लोपामुद्रा, अपाला, कुद्र, विश्वारा जैसी अनेक ऋषिकाओं का नामोल्लेख है तथा ऋग्वेद के दशम् मण्डल में अनेक विदुषी स्त्रियों का उल्लेख है, जैसेः– घोषा, जुहू, वागन्भरिणी, पौलोमी, जरीता, श्रद्धा, कामायनी, उर्वशी सरनगा, यामी, इन्द्राणी, सावित्री, देवयामी आदि। सामवेद में भी नवोढा, अकरिष्ट भाषा, सिकता निवावरी एवं गौपायन जैसी अन्य विदुषी नारियों का वर्णन मिलता है। वैदिक काल में स्त्रियों को ब्रह्मचर्य व्रत (छात्र–जीवन की अनुशासित जीवन शैली) का पालन करने का अधिकार प्राप्त था। अतः ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन करते हुए शिक्षा प्राप्त करने वाली विदुषी नारियाँ ब्रह्मवादिनी कहलाती थी। ऋग्वेद में पूर्ण शिक्षा प्राप्त करने वाली अनेक अविवाहित ब्रह्मचारिणी कन्याओं का उल्लेख है। ऋग्वेद के अनुसार ''स्त्रियों को अपने समान शिक्षा प्राप्त विद्वान पुरूष से ही विवाह करना चाहिए''।[3] ऋग्वेद के दशम् मण्डल के सरमा–पणि संवाद से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन नारियां दौत्य कर्म में भी निपुण थी। यह संवाद ऋग्वैदिककालीन नारियों की प्रखर बुद्धि तथा अद्वितीय वाक चातुर्य का विलक्षण उदाहरण है। ऋग्वेद–10/108/2 में उल्लेख है –

''इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामिमह इच्छन्ती पणया निधीन्वः।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत्तथा रसाया अंतर पयांसि।।'' [4]

इन ऋषिकाओं के अतिरिक्त पांच अन्य ऋषिकाओं – निषद्, उपनिषद्, श्री, लक्षा तथा मेधा द्वारा ऋग्वैदिक संहिता के 4 बालखिल्य–सूक्तों की रचना किए जाने का उल्लेख बृहद्देवता एवं अन्य साहित्यिक स्त्रोतों में प्राप्त होता है।[5] ऋग्वेद के एक सूक्त में पौलोमी शची अत्यन्त उच्च स्वर में स्वस्तुति करते हुए यह कहती है – ''मैं सर्वत्र विजयी हूँ। मेरे शक्तिशाली पुत्र शत्रुओं का विनाश करने वाले हैं। मेरी तेजस्विनी पुत्री साम्राज्ञी है। पति मेरे अनुकूल व्यवहार करें। मैं ज्ञानवती हूँ। (ऋग्वेद, ण् 159.3)[6]

ऋषि कात्यायन ने अपने ग्रंथ ऋग्वेद सर्वानुकमाणी में निम्नलिखित विदुषियों का नामोल्लेख किया हैः– नदी, लोपामुद्रा, वागम्भरणी, सिकता–निवावरी, शची पौलोमी, इन्द्र–मातरों, सूर्या सावित्री, श्रृद्धा–कामायनी, विश्ववारा, यमी, दक्षिणा प्रजापत्या, जुहुर्ब्रह्मजाया आदि।[7]

उक्त ब्रह्मवादिनी ऋषिकाओं के यशोगान से सम्पूर्ण वैदिक साहित्य देदीप्यमान है। इन्होनें अपने बुद्धि वैभव के आदर्शों को शिखर पर प्रतिष्ठित किया। वैदिक संहिताओं के काल में स्त्रियाँ पुरूषों के समान अपरा एवं परा–विधा निपुण–निष्णात होती थी। उल्लेखनीय है कि वर्तमान युग के पश्चिमी सभ्यता के दौर में जहाँ स्त्री–पुरूष के समानाधिकारों की वकालत की जा रही है, वहीं वैदिक युगीन समाज में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री को पुरूष के समान अधिकार प्राप्त थे। वह पुरूष के समान यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न करने, गायत्री मंत्र एवं गायत्री उपदेश तथा वेदाध्ययन की अधिकारिणी थी।

उत्तरवैदिक काल में यद्यपि ऋग्वैदिक काल की तुलना में स्त्रियों की दशा में गिरावट आई परन्तु उन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था। उत्तरवैदिक काल में यद्यपि उन्हें उपनयन संस्कार से वंचित कर दिया गया था तथापि उपनिषदां से सूचना प्राप्त होती है कि उत्तरवैदिककालीन समाज में कुछ नारियां उच्च शिक्षा प्राप्त करती थी। बृहदारण्यकोपनिषद् में उल्लेखित याज्ञवल्क्य–गार्गी संवाद इस तथ्य की पुष्टि करता है। एक वाद–विवाद के दौरान याज्ञवल्क्य ने गार्गी से कहा कि गार्गी, तुम अधिक बहस मत करो, अन्यथा तुम्हारा सिर फोड़ दिया जाएगा। (बृहदारण्कोपनिषद्, ɯɯ6)[8]। महर्षि के ज्ञान की परीक्षा लेती हुई यह परम विदुषी अपने दार्शनिक ज्ञान तथा सत्यानुभूति का उच्चस्तर प्रकट करती है। गार्गी ने अपनी अद्भुत प्रतिभा, अकाट्य तर्कशक्ति, विलक्षण मेधाशक्ति एवं सूक्ष्म विचार–तन्तुओं से जटिल पृच्छाएँ कर महर्षि को पराजित कर दिया। बृहदारण्यकोपनिषद् (अपए 4ए 17) में विदुषी एवं पंडिता पुत्री का पिता बनने के निमित्त एक व्यक्ति द्वारा विशेष अनुष्ठान और प्रार्थना किए जाने का उल्लेख है। कौषीतकी ब्राह्मण ;अपपए 6द्ध से ज्ञात होता है कि एक आर्य महिला पत्यासवष्टि ;च्ंजीलेंअंजपद्ध अध्ययन करने के लिए उत्तर दिशा की तरफ गई तथा वाक् सरस्वती देवी की उपाधि प्राप्त की।

वागदेवी का छायाचित्र

तैतरीय संहिता एवं शतपथ ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि स्त्रियों को नृत्य–गायन, संगीत, काव्य आदि की शिक्षा प्रदान की जाती थी। शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट कहा गया है कि स्त्रियों को यज्ञ करने एवं वैदिक ग्रंथों के अध्ययन का अधिकार था। ऋषि याज्ञवल्क्य की परम् विदुषी पत्नी मैत्रेयी ने सम्पत्ति का त्याग कर ऋषि से मात्र परम् सत्य का ज्ञान दान देने की प्रार्थना की।[9] यजुर्वेद ;अपपपए 1द्ध में उल्लेखित है कि ब्रह्मचर्य व्रत समाप्त करने के पश्चात् कन्या को अपने समान ज्ञान–प्राप्त विद्वान व्यक्ति (मनीषि) से ही विवाह करना चाहिए। यह शिक्षित स्त्री–पुरूष के विवाह को ही उपयुक्त मानता है। अथर्ववेद में भी स्पष्ट उल्लेख है कि पुत्रियों को ब्रह्मचर्य आश्रम समाप्त करने के पश्चात् ही गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिए। ''ब्रह्मचर्येण कन्या युवानम् विन्दते पतिम्''। अथर्ववेद ;गप्ए 6द्ध[10]
कौषीतकी एवं ऐतरेय ब्राह्मण में एक कुमारी गंधर्वग्रहीता को प्रखर बुद्धि वाली अर्थात् विशेषाविजना कहा गया है।[11] ऋग्वेद पर लिखे गए भाष्य बृहद्देवता में शौनक ने अनेक मंत्रद्रष्ट्री नारियों के नामों का उल्लेख किया है। इन विदुषी नारियों ने वेदाध्ययन, काव्य–रचना तथा त्याग–तपस्या द्वारा ऋषिका का पद प्राप्त किया। उत्तरवैदिककाल में व्यावहारिक शिक्षा के अन्तर्गत कन्याएं चित्रकला में भी रूचि रखती थी। विष्णुपुराण से ज्ञात हाता है कि बाणासुर के मंत्री कुष्माण्ड की कन्या सखी चित्रलेखा देवां, गंधर्वो और

मानवाकृतियों के चित्रांकन में निपुण थी। चित्रलेखा द्वारा चित्रित अनिरूद्व का चित्र विशेष उल्लेखनीय था।[12]

बौद्ध–काल में स्त्री–शिक्षा :–

600 ईसा पूर्व बौद्ध काल तक आते–आते स्त्रियों की स्थिति पूर्वकाल की तुलना में निम्न हो गई थी। दीघनिकाय, महापरिनिर्वाण सुत्त, टप 23 से ज्ञात होता है कि महात्मा बुद्ध ने अपने प्रिय शिष्य आनन्द के विशेष आग्रह पर बुद्ध की सौतेली माता गौतमी महा प्रजापित को बौद्ध संघ में प्रवेश की अनुमति प्रदान की परन्तु साथ ही यह भी उद्घोषित किया कि स्त्रियों को संघ में प्रवेश देने से बौद्ध धर्म व संघ का अस्तित्व 500 वर्षो में ही समाप्त हो जाएगा। बुद्ध के इस कथन से स्पष्ट है कि समाज में स्त्री जाति और भिक्षुणी संघ की हीन स्थिति थी। वैशाली की नगरवधू आम्रपाली भी बुद्ध की शिष्या थी। राधा कुमुद मुखर्जी के अनुसार ''बौद्ध युग में समाज में स्त्रियों को सम्मानित स्थान प्रदान करने की परम्परा बनी रही। स्त्रियां बौद्ध संघ/भिक्षुणी संघ में प्रवेश पा सकती थी। भिक्षुणी संघ में प्रविष्ट अनेक स्त्रियां उच्च शिक्षिता थी।'' धार्मिक ग्रंथों का अत्यधिक ज्ञान प्राप्त होने के कारण उनमें से कुछ शीर्ष भिक्षुणियां, युवा भिक्षुणियों की शिक्षिकाएँ बन गई थीं। चुल्लवग ;ग्प 8द्ध से ज्ञात होता है कि एक भिक्षुणी, उपालावन्ना नामक अन्य युवा भिक्षुणी की शिष्या थी। बौद्ध ग्रंथ अंगुतर निकाय पर बुद्धघोष की टीका ''मनोरथपूरणी'' के एक अध्याय में महात्मा बुद्ध की प्रमुख शिष्याओं का वर्णन है। उनमें से अधिकांश शिष्याओं ने संघ में प्रवेश प्राप्त किया जो ''थेरी'' के नाम से प्रसिद्ध हुईं। बुद्ध ने आध्यात्मिक गुणों से परिपूर्ण 13 थेरियों का विशेष उल्लेख किया है। मज्झिमनिकाय में धम्मादिन नामक एक विशिष्ट थेरी का संदर्भ प्राप्त होता है, जिसे विशिष्ट आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त था। वह कठिन तात्विक/आध्यात्मिक प्रश्नों का सहजता से उत्तर दे सकती थी। थेरीगाथा पर धर्मपाल द्वारा लिखी गई एक टीका में ''बौद्ध धर्म सुधार'' आन्दोलन की कुछ स्त्रियों का नामोल्लेख है, जिनमें सोमा, अनुपमा, रानी खेमा, सुजाता, छापा, किसागौतमी, सुन्दरी आदि प्रमुख हैं। इनमें से कुछ थेरियों ने ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् अपने धर्म का प्रचार–प्रसार किया। सुक्का नामक भिक्षुणी का उपदेश सुनने के लिए लोगों की भीड़ एकत्र होती थी।[13] बौद्ध ग्रंथ ''ललित विस्तार''से सूचना प्राप्त होती है कि बौद्ध काल में भी स्त्रियों को शास्त्राध्ययन करने का अधिकार प्राप्त था। मौसी गौतमी लेखन, काव्य–रचना और शास्त्र नीति की कुशल ज्ञाता थीं।[14] यद्यपि इस काल में स्त्रियों को उपनयन एवं वेदाध्ययन के अधिकर से वंचित होना पड़ा था तथापि बौद्ध धर्म के अनुसार स्त्रियां भी निर्वाण प्राप्ति की पात्र हैं। अल्तेकर महोदय के अनुसार धर्म और दर्शन का अध्ययन करने के उद्देश्य से अनेक बौद्ध–भिक्षुणियां आजीवन अविवाहित रहती थीं। स्वाभाविक है कि उनमें शिक्षा तथा बौद्धिकता का औसत स्तर अत्यन्त ऊँचा होगा।[15] विभिन्न बौद्ध ग्रंथों में अनेक विदुषी स्त्रियों जैसे सम्राट अशोक की पुत्री संघमित्रा, खेमा, उत्तरा, माला, पीगू, धम्मादसी, अग्गिमिता, हेमा, अंजलि, सुमना, महिला, महादेवी, पद्मा, हेमासा, काली उपालि, रेवती, चेन्ना, विशाखा, नंदा, दासी, धम्मा, नंदुतारा, महातिस्सा, कुलनागा, शोभिता आदि द्वारा अनेक बौद्ध धर्म ग्रंथों का अध्ययन किए जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।

जैन साहित्य में स्त्रियाँ :–

जैन धर्म सैद्वान्तिक रूप में स्त्री तथा पुरूष दोनों को निर्वाण प्राप्ति का समान अधिकारी स्वीकार करता है। जैन संस्करणों से ज्ञात होता है कि कौशाम्बी नरेश की पुत्री राजकुमारी जयन्ती एक विदुषी महिला थी। धर्म एवं दर्शन का अध्ययन करने के निमित्त वह आजीवन अविवाहित रही। उसने महावीर स्वामी के साथ वाद–विवाद किया।[16] धात्यव्य है कि 14वीं शताब्दी में गुजरात स्थित तपोगच्छ धार्मिक विश्वविद्यालय द्वारा महिलाओं को गणिनी (गण की प्रधान), प्रवर्तिनी (कार्यकर्ता), महातारा (महान स्त्री) आदि विभिन्न उपाधियां प्रदान की जाती थी, जैसें–चुल्ल नामक स्त्री को गणिनी तथा महातारा की उपाधियां प्राप्त थी। सोमलवधी गणिनी को प्रवर्तिनी का उच्च पद प्रदान किया गया। इलादुर्ग में आयोजित एक भव्य समारोह में 3 विदुषियों को सूरी, 6 अध्येताओं को वाचक एवं 8 अन्य स्त्रियों को प्रवर्तिनी की उपाधियाँ दो गई थी।[17] गुजरात राज्य में मंत्री वास्तुपाल एवं तेजपाल शिक्षा–साहित्य के प्रमुख संरक्षक थे। तेजपाल की पत्नी अनुपमा अपनी विद्वता के लिए प्रसिद्ध थी। अनुपमा ने कंकण काव्य ;टमतेम वित ̆वउमदद्ध नामक दर्शन–साहित्य

की रचना की।[18] दर्शनशास्त्र में विशेष अभिरूचि होने के कारण वह ''षड्–दर्शन–माता'' के नाम से प्रसिद्ध थी।

सूत्रकाल एवं नारी शिक्षा :–

सामान्यतया सातवीं अथवा छठी शताब्दी ई. पूं. से लेकर तृतीय शताब्दी ई. पू. तक का काल सूत्रकाल माना जा सकता है।[19] 5वीं शताब्दी ई.पू. में सूत्र साहित्य के अनुसार स्त्रियों को भी उपनयन, सावित्रीवाचन एवं वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त था। वैदिककाल में स्त्रियों के उपनयन संस्कार के विषय में हारीत तथा यम धर्मसूत्र में निम्नलिखित वर्णन प्राप्त होता है:–

''पुराकल्पे कुमारीणां मौज्जीबन्धनामिष्यते।
अध्यापनं च वेदानाम् सावित्रीवचनम् तथा।'' [20]

हारीत धर्मसूत्र के अनुसारः–

''द्विविधाः स्त्रियों ब्रह्मवादिन्यस्सद्योवध्वश्च।
तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनमग्नीन्धनं वेदाध्ययनं
स्वगृहे च भिक्षाचर्येति। सद्योवधूनां चोपस्थिते
विवाहे कथंचिदुपनयनमात्रं कृत्वा विवाह कार्यः'' [21]

हारीत धर्म सूत्र ;ग्ण्ए 23द्ध के अनुसार वैदिक काल में वैदिक शिक्षा प्राप्त करन वाली स्त्री–शिष्याओं के निम्नलिखित दो वर्ग थेः–

(क) ब्रह्मवादिनी : ये शिष्याएँ अध्ययन की समाप्ति के पश्चात् ही विवाह करती थी। यद्यपि कुछ ब्रह्मवादिनियाँ आजीवन अविवाहित भी रहती थी। ये शिष्याएँ जीवनपर्यन्त ज्ञानार्जन में रत आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का अनुपालन करती थी, जैसे– ऋषि कुशध्वज की कन्या वेदवती।

(ख) सधोवधू : नियमित रूप से किए जाने वाले अनुष्ठानों, वेदमंत्रों और याज्ञिक–प्रार्थनाओं के लिए आवश्यक महत्वपूर्ण वैदिक ऋचाओं की शिक्षा प्राप्त करने वाली स्त्रियां ''सधोवधू'' कहलाती थी। उन्हें संगीत तथा नृत्य की शिक्षा भी प्रदान की जाती थी।[22] विवाह के समय ही मात्र धार्मिक विधान की पूर्ति हेतु इन कन्याओं का उपनयन होता था। श्रोत सूत्र तथा गृह सूत्र में उल्लेख है कि धार्मिक समारोह के आयोजन में पत्नी, पति के साथ समान रूप से वैदिक मंत्रों का उच्चारण करती थी।

आश्वलायन श्रोत सूत्र . ए 11 एवं गोभिल गृह सूत्र ए 3 के अनुसार वैदिक समारोहों, अनुष्ठानों में भाग लेने के लिए पत्नी का पूर्ण शिक्षिता एवं ज्ञानवती होना आवश्यक है।[23] गोभिल गृहसूत्र में स्पष्ट उल्लेख है कि वैदिक मंत्रोच्चारण के द्वारा स्त्री को अग्निहोत्र अनुष्ठान संपादित करने का पूर्ण अधिकार है। गोभिल गृहसूत्र के अनुसार ''पत्नीमाध्यापयेत् कस्मात् पत्नीजुहुयादिति बसनात्, नाहि खल्वानाधित्य सकनोति पत्नी होतुमिति।'' (ण्3) अर्थात् स्त्रियों को पवित्र धर्मग्रंथों का पूर्णज्ञान होना आवश्यक है। ज्ञानाभाव में वह अग्निहोत्र संपादित करने की अधिकारिणी नहीं है।[24] आश्वलायन श्रोतसूत्र के अनुसार – ''इमाम् मंत्रम् पत्नी पठत् वेदाम् पत्नै प्रदाय वच्येत्'' ;ए ण्11द्ध[25] आश्वलायन गृहसूत्र, ण्ण्ण्4ण्4 में गार्गी वाचकनवी, वधवा, प्रतिधेयी, सुलवा, मैत्रेयी आदि ऋषिकाओं का नामोल्लेख है।[26] स्पष्ट है कि सूत्रकारों का नारी के प्रति दृष्टिकोण परवर्ती स्मृतिकारों की अपेक्षा अधिक उदार था, यद्यपि सूत्रकाल में उनकी दशा वैदिक काल की अपेक्षा अधिक हीन हो गई थी।

महाकाव्य काल में स्त्री–शिक्षा :–

महाकाव्य काल से हमारा तात्पर्य महर्षि वाल्मीकी द्वारा रचित आदिकाव्य 'रामायण' तथा महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित 'महाभारत' के काल से है। विन्टरनित्स का मानना है कि मूलतः रामायण की रचना चौथी शताब्दी ई. पू. में हुई तथा इसका अन्तिम स्वरूप दूसरी शताब्दी ईस्वी के लगभग निश्चित हुआ था। महाभारत की रचना का मूल समय भी ई.पू. चौथी शताब्दी माना गया है एवं इसके अन्तिम स्वरूप की तिथि चौथी शताब्दी ई. निर्धारित की गई है।[27] महाकाव्य काल में स्त्रियों की दशा वैदिक युग की अपेक्षा हीन थी, परन्तु इनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस युग में भी उच्चकुलीन स्त्रियाँ पूर्ण शिक्षिता होती थी एवं उन्हें याज्ञिक अनुष्ठानों के सम्पादन का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। रामायण के अयोध्याकाण्ड से सूचना प्राप्त होतो है कि रानी कौशल्या अपने पुत्र राम के राज्याभिषेक समारोह के अवसर पर स्वयं अकेली ही पृथक रूप से प्रातःकालीन यज्ञ का आयोजन कर रही थी।

''सा क्षौमवसना दृष्टा नित्यं व्रतपरायणा।
अग्निं जुहोति स्म तदा मंत्रविंकृतमंगला।।'' ;ण्ण 20ण्15द्ध

उल्लेखनीय है कि रामायण में कौशल्या एवं तारा को 'मंत्रविद्' अर्थात् वैदिक साहित्य की महान ज्ञाता कहा गया है। सीता को संध्या करते हुए दर्शाया गया है।

''संध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदी चेमां शुभजलां संध्यार्थ वरवर्णिनी।।'' रामायण ;टण्15ण्48द्ध [28]

रामायण के किष्किन्धाकाण्ड में उल्लेखित राम–तारा संवाद से ज्ञात होता है कि स्त्रियों को भी पुरूषों के समान वेदाध्ययन और याज्ञिक अनुष्ठान के अधिकार प्राप्त थे।[29]

महाभारत के बाणपर्व में द्रौपदी को ''प्रिया च दर्शनीया च पंडिता च पतिव्रता'' गुणों से विभूषित किया गया है। कृष्ण, भीम, युधिष्ठिर एवं सत्यभामा के साथ धर्म और नैतिकता जैसे उच्च विषयों पर उसका वार्तालाप एक उच्च शिक्षिता नारी की छवि प्रस्तुत करता है। वह स्पष्ट रूप से कहती है कि उसने अपने भाईयों के साथ अपने पिता द्वारा नियुक्त एक ब्राह्मण शिक्षक से बृहस्पति–नीति का ज्ञान प्राप्त किया था।[30] महाभारत से ज्ञात होता है कि पाण्डवों की माता कुन्ती अथर्ववेद के मंत्रों की पूर्ण ज्ञात थी। (महाभारत, ण्ण 305ण्20द्ध[31] पारस्कर गृहसूत्र से ज्ञात होता है कि सीतायज्ञ (उत्तम फसल, श्रेष्ठ अनाज उपज के निमित्त किया जाने वाला यज्ञ); रूद्रयाग (कन्याओं की वैवाहिक मंगल कामना के निमित्त), रूद्रबलि आदि यज्ञ मात्र नारियों द्वारा सम्पादित किए जाते थे।[32]

पाणिनी के काल में स्त्री–शिक्षा :

प्रमुख व्याकरणविद् पाणिनी और पंतजलि ने अपने ग्रंथों में स्त्रियों द्वारा वैदिक शिक्षा प्राप्त करने का उल्लेख किया है। पाणिनी के अनुसार 'चरण' संज्ञक वैदिक शिक्षा केन्द्रों में प्रवेश प्राप्त कर स्त्रियाँ ज्ञानोपार्जन कर सकती थी। पाणिनी ने अपने ग्रंथ अष्टाध्यायी में कंठ चरण शाखा की स्त्री–शिष्या कठी एवं ऋग्वैदिक बहृचीं शाखा की शिष्या बहृचीं का संदर्भ प्रस्तुत किया है।[33] उसने स्त्री–शिष्यों को छात्री तथा उनके पृथक विशेष आवासों को छात्रीशाला (छात्र्यादयःशालायाम्) कहा है। दुर्भाग्यवश, इन शिक्षण संस्थाओं के प्रबंधन के संदर्भ में कोई स्पष्ट एवं पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध नहीं है। स्त्री शिक्षिकाओं को ''आचार्या'' कहा गया है। अष्टाध्यायी के टीकाकार कात्यायन ने विदुषी स्त्री–शिक्षिकाओं के लिए अध्यापिका, उपाध्यायी, आचार्या आदि उपाधियों का प्रयोग किया है। महान् व्याकरणविद् पतंजलि ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'महाभाष्य' में एक स्त्री अध्यापिका औद्मेघा और उसके शिष्यों का उल्लेख किया है। पतंजलि न स्त्री शिष्याओं की अनेक श्रेणियों का विवरण प्रस्तुत किया है, जैसे एक नारी शिष्या अद्बयेत्री और एक अनुभवहीन ;छवअपबमद्ध शिष्या मानविका कहलाती थी। कठ शाखा की सर्वप्रमुख नारी–शिष्या कठी–वृन्दारिका एवं अन्य विशिष्ट स्त्री शिष्या पूज्यमना कठी कहलाती थी। यह वैदिक शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के रूप में स्त्रियों की सफलता का सूचक है।[34] उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि पाणिनी के काल में भी स्त्री एवं पुरूष दोनों समान रूप से वैदिक शिक्षा प्राप्त करते थे।

स्मृतिकाल में स्त्री–शिक्षा :

स्मृतिकाल तक पहुँचते–पहुँचते सामाजिक व्यवस्था में गंभीर परिवर्तन होने लगे। इस काल में कन्या–विवाह अल्पायु में होने के कारण स्त्री–शिक्षा का प्रसार अवरूद्व–सा हो गया था। नारी को उपनयन संस्कार में वैदिक मंत्रोच्चार के अधिकार से वंचित कर दिया गया। मनुस्मृति (रचनाकाल–लगभग द्वितीय शताब्दी ई.पू.) में यह व्यवस्था है कि स्त्री का उपनयन संस्कार तो सम्पन्न किया जा सकता है, परन्तु उक्त संस्कार में वैदिक मंत्रोच्चारण नहीं किया जा सकता।

''अमन्त्रिका तु कार्या –इयं स्त्रीणाम् आबृद् अशेषतः।
संस्कारार्थ शरीरस्य यथाकालं यथाकमम्।।'' मनुस्मृति –2–66
''वैवाहिको विधिः, स्भणा संस्कारो वैदिक स्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थो अग्नि–परिक्रिया।।'' मनुस्मृति–2–67

इस संदर्भ में मनु का मत है कि पति ही कन्या का आचार्य, विवाह संस्कार ही स्त्री का यज्ञोपवीत संस्कार, पति–सेवा ही उसका आश्रम–आवास तथा गृहकार्य ही स्त्री के लिए दैनिक धार्मिक अनुष्ठान थे।[35] याज्ञवल्क्य ने भी नारियों के उपनयन अथवा यज्ञोपवीत संस्कार पर प्रतिबंध लगा दिया था। याज्ञवल्क्य स्मृति (रचनाकाल लगभग द्वितीय शताब्दी ई.) के अनुसार कन्या को जातकर्म, नामकरण और चूड़ा संस्कार करने की अनुमति प्राप्त है, परन्तु इन संस्कारों में वैदिक मंत्रोच्चार निषेध कर दिया गया।[36] नारदस्मृति के टीकाकार असहाय (8वीं शताब्दी ई.) ने भी स्त्रियों द्वारा वेदाध्ययन एवं शास्त्राध्ययन किए जाने पर प्रतिबंध लगा दिया था। ''नारद स्मृति'' के अनुसार शास्त्रों में उल्लेखित धर्म–अधर्म तथा सत्–असत् के ज्ञानाभाव के कारण नारी, नर पर आश्रित है।[37] ''शास्त्राध्ययनानधिकारित्वात् शास्त्रमात्रोपजीवी धर्माधर्मज्ञानाभवात् अस्वातंत्र्यम्।''[38] स्पष्ट है कि स्मृतिकारों की नारी के प्रति ऐसी द्विपक्षीय व्यवस्था के कारण स्त्री–शिक्षा का ह्रास हुआ तथा उनके याज्ञिक अधिकार समाप्त हो गए । परवर्ती स्मृतिकारों ने स्त्री–उपनयन की औपचारिकता को ही समाप्त कर दिया। स्मृति काल में स्त्रियों को मुख्य रूप से कुशल गृहिणी बनने तथा अन्य गृहोपयोगी काम–काज की शिक्षा प्रदान की जाती थी। 18वीं शताब्दी में रचित त्रयम्बकयज्वन् की रचना 'स्त्री धर्म पद्वति' की प्रस्तावना में स्पष्ट उल्लेख है कि स्मृतियों के अनुसार पति की सेवा करना ही पत्नी का मुख्य धर्म है। ''मुख्यो धर्मः स्मृतिषु विहितो भार्तृशुश्रुषानम हिः''।[39]

गुप्तकाल में स्त्री शिक्षा :

गुप्तकालीन रचना कामसूत्र (वात्स्यायन विरचित) में एक कुशल गृहिणी के अनेक कार्यों का उल्लेख किया गया है, जैसे–पाककला, घर में बागवानी, फलों–फूलों एवं औषधीय गुणों वाले पौधे लगाना, मक्खन बनाना, सूत कातना, वस्त्र बुनना, धान–जौ आदि कूटना, पीसना, भृत्यों के वेतन की जानकारी रखना, कृषि तथा मवेशियों की देखभाल करना, पालतू पशुओं की देखभाल करना, परिवहन, दैनिक एवं वार्षिक आय–व्यय की जानकारी रखना, क्रय–विकय की वस्तुओं की पूर्ण जानकारी आदि।[40] उल्लेखनीय है कि इस काल में स्त्री शिक्षा के निमित्त कोई औपचारिक शैक्षिक केन्द्र नहीं होते थे। वह अपने गृह में रहकर ही शिक्षा के इन व्यावहारिक आयामों की जानकारी प्राप्त करती थी। वात्स्यायन ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'कामसूत्र' में 64 कलाओं का उल्लेख करते हुए स्पष्ट निर्देश दिया है कि एक नारी को इन कलाओं का विस्तृत अध्ययन करना चाहिए।[41] अल्तेकर महोदय के अनुसार गुप्तकाल में कौमुदीमहोत्सव नामक नाटक की रचना विद्या और विज्जका नामक स्त्री द्वारा की गई थी।[42]

पौराणिक काल में महिला–शिक्षा :

इस काल तक पहुंचते–पहुंचते स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। श्रीमद् भागवत पुराण में उल्लेख है कि स्त्री को शूद्र की भांति वेद–श्रवण का अधिकार प्राप्त नहीं था, परन्तु पुराणों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उच्चवर्गीय तथा राजवंशीय अभिजात्य परिवार की कन्याओं को शिक्षा–प्राप्ति के लिए पर्याप्त अवसर प्राप्त थे, यद्यपि साधारण परिवारों में स्त्री–शिक्षा का प्रसार अवरूद्ध सा हो गया था। विष्णुपुराण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि रानी केकैई विभिन्न विषयों की ज्ञाता विदुषी स्त्री थी। केकैई सम्यक् दर्शन, सांख्य दर्शन (पतंजलि), वैशेषिक दर्शन (कणाद), वेदांत, न्याय, मीमांसा, चार्वाक आदि दर्शनशास्त्रों की ज्ञाता थी। वह लौकिक–शास्त्र, श्रृंगार, संगीत, नृत्यकला, अलंकारशास्त्र, वाद्ययंत्र–वादन, नवरस, अक्षरमात्र, गणितशास्त्र, गद्य–पद्य, व्याकरण, छंद–अलंकार, नाम माला, लक्षणशास्त्र, तर्क, इतिहास, चित्रकला, रत्नपरीक्षा, अश्वपरीक्षा, शस्त्रपरीक्षा, नर परीक्षा, गजपरीक्षा, वृक्षपरीक्षा, वस्त्रपरीक्षा, सुगंध–परीक्षा, ज्योतिषविधा, मंत्र, औषधिविज्ञान, वैद्यकर्म, चिकित्साविज्ञान, युद्धकला आदि अनेक विभिन्न कलाओं में निपुण–निष्णांत स्त्री थी।[43] हरिवंश पुराण के नवम् सर्ग में उल्लेख है कि भगवान ऋषभदेव ने अपने पुत्रों के साथ–साथ ब्राह्मी एवं सुंदरी नामक दो प्रखर बुद्धिमान पुत्रियों को भी अक्षर, चित्र, संगीत, गणित आदि विविध कलाओं की शिक्षा प्रदान की।

''अक्षरालेखगंधर्वगणितादिकलार्णवम्। सुमेधानैः कुमारीभ्यामवगा हयतिस्म सः।।'' [44]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि तत्युगीन स्त्री को जितनी कलाओं का ज्ञान था, संभवतः वर्तमानयुगीन नारी उनसे अनभिज्ञ है। सातवाहन शासक हाल ने दक्षिण भारत के लेखकों व कवियों की रचनाओं का संकलन प्राकृत भाषा में ''गाथासप्तसती'' नामक ग्रंथ में किया है। इसमें सात कवयित्रियों की रचनाएँ भी हैं, जिनमें रेवा, रोहा, माधवी, अनुलक्ष्मी, पाहई, बद्धवही और शशिप्रभा हैं।[45] चीनी यात्री ह्वेनसांग के अनुसार, कन्नौज के सम्राट हर्षवर्धन (606–646 ईस्वीं) की बहन राज्यश्री अत्यंत विदुषी थी एवं उसे बौद्व धर्म की सम्मतिय शाखा के सिद्वांतों का पूर्ण ज्ञान था। युवान–चुआंग के महायान शाखा के सिद्वांतों पर किए जाने वाले विशेष वार्तालाप को वह पूर्ण रूचि एवं प्रशंसा के साथ सुनती थी।[46] बाणभट्ट के अनुसार राज्यश्री को बौद्ध सिद्वांतों की शिक्षा प्रदान करने क लिए दिवाकर मित्र की नियुक्ति की गई थी। साहित्यकार सम्राट हर्षवर्धन ने अपने नाटक 'रत्नावली' में रानी द्वारा वर्तिका (ब्रश) से रंगीन चित्र बनाने का विवरण दिया है। इसी नाटक में रानी को संगीत, नृत्य, वाद्य आदि के विषय में परामर्शदात्री कहा गया है।[47] प्रसिद्ध संस्कृत कवि दण्डी ने अपनी रचना दशकुमारचरित में लिखा है कि एक देवदासी को निम्नलिखित विविध विषयों और कलाओं की शिक्षा प्रदान की जाती थी, जैसे–नृत्य, गीत, वाद्य, नाट्य, चित्र, इत्र निर्माण, लिपिज्ञान, वाचनकौशल, द्यूतकला, व्याकरण, तर्क, दर्शन, क्रीड़ाकौशल, ज्योतिष, वाक्माधर्य रति, प्रसाधन–अलंकार आदि।[48]

पूर्व मध्यकाल में स्त्री–शिक्षा :

पूर्व मध्यकाल में संस्कृत भाषा के प्रसिद्ध विद्वान महाकवि श्री राजशेखर ने स्त्री–पुरूष समानता पर बल दिया है। प्रसिद्ध ग्रंथ काव्य–मीमांसा में संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान राजशेखर ने लिखा है कि ''पुरूषों के समान स्त्रियाँ भी कवि हो सकती हैं। क्योंकि संस्कार तो बिना किसी लिंग भेदभाव के आत्मा में अवतरित रहते हैं।'' उसने 'सुकती–मुक्तावली' में शील भट्टारिका, विकटा–नितम्बा, विजयांक, प्रभुदेवी तथा सुभद्रा नामक विदुषियों की अतिशय प्रशंसा की है। राजशेखर ने विजयांक की तुलना सरस्वती देवी से की है।[49] उसने 'कर्पूरमंजरी' नामक एक नाटक की रचना प्राकृत भाषा में अपनी पत्नी चाहमान राजकुमारी अवन्ति सुंदरी के आग्रह पर की थी। वह एक उत्कृष्ट कवयित्री, टीकाकार और विदुषी स्त्री थी। कर्पूरमंजरी की प्रस्तावना में राजशेखर ने अपनी पत्नी की काव्यगत विषयों पर प्रदान किए गए सहयोग का प्रशंसापरक वर्णन किया है।[50] अवन्ति सुंदरी ने प्राकृत कविता काव्य में आने वाले वाले देशी शब्दों के एक शब्दकोष की रचना की, जिसमें प्रत्येक शब्द के प्रयोग के स्वरचित उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं।[51]

चन्दरबरदाई द्वारा लिखित पृथ्वीराज रासौ से ज्ञात होता है कि राजकुमारी संयोगिता ने एक ब्राह्मण स्त्री मदना से शिक्षा प्राप्त की थी। इस महाकाव्य में वह धर्म एवं गृहस्थ जीवन की शिक्षा प्राप्त करती दिखलाई

देती है।[52] साथ ही उसने 'विनय पथ' की शिक्षा भी ग्रहण की थी।[53] मलिक मुहम्मद जायसी की रचना 'चित्ररेखा' से भी स्त्री–शिक्षा के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त होती है। चित्ररेखा 5 वर्ष की अवस्था में शिक्षा प्राप्त करना प्रारम्भ करती है। अनेक गुरुओं से शिक्षा प्राप्त कर वह पण्डिता बन जाती है। स्वयं जायसी के शब्दों में:–

''पाँच बरस आना भर सो बड़ी बात, रसना अंबृत बैन सांवरी अंबृत
लग पढावै गुरु गणेशु, भई पंडित शुभा सुनि नारेसु''[54]

स्पष्ट है कि चौहान शासकों ने स्त्री–शिक्षा के निमित्त उपयुक्त वातावरण निर्मित किया था।
अद्वैतवाद के संस्थापक श्रीशंकराचार्य एवं मण्डनमिश्र के मध्य हुए दार्शनिक शास्त्रार्थ की निर्णायिका मण्डन की विदुषी धर्मपत्नी भारती थी। वह तर्क, साहित्य व्याकरण, वेदांत, मीमांसा जैसे जटिल विषयों की ज्ञाता थी।[55] कवि सांरगधर ने विज्जिका, शिलाभट्टारिका, विकटनितम्बा, पद्मश्री, फालगुस्तानी आदि कवियित्रियों का उल्लेख किया है। चाहमान शासक गूवक द्वितीय की बहन कलावती 64 कलाओं में पारंगत थी।[56]

8वीं सदी की रचना ''कुवलयमाला'' (उद्यासनसूरि कृत) के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मरूकच्छ के राजा भृगु की विदुषी पुत्री राजकीर की शिक्षिका थी। उसने अल्पकाल में ही राजकीर को अध्ययन के द्वारा अक्षरज्ञान/वर्णमाला, नृत्य, व्याकरण, समुद्रशास्त्र आदि अनेक विधाओं का विशेषज्ञ बना दिया था। स्वयं राजकीर ने भी संन्यासिनी ऐणिका के शिक्षक/गुरू के रूप में कार्य करते हुए उसे अक्षरज्ञान, धर्म–अर्थ–काम विधाओं के सभी शास्त्रों का अध्ययन करवाया था।[57]

8वीं शताब्दी में संस्कृत से अरबी भाषा में अनुवादित चिकित्सा–शास्त्र की एक पुस्तक प्राप्त होती है, जिसकी लेखिका एक हिन्दू विदुषी रूसा थी। इस पुस्तक में मुख्यतः स्त्री रोगों से संबंधित चिकित्सा का वर्णन है।[58] प्रस्तुत उदाहरण से स्पष्ट होता है कि तत्युगीन नारियों की आयुर्वेदिक चिकित्साविज्ञान में भी रूचि थी। 10वीं सदी में मालवा में परमार वंश का संस्थापक उपेन्द्रराज था। उसके दरबार में सीता नामक एक कवयित्री निवास करती थी, जिसने अपने आश्रयदाता शासक उपेन्द्र की प्रशंसा में अनेक गीतों की रचना की। परमार वंश का सर्वाधिक प्रसिद्ध राजा कविराज भोज की पत्नी रानी अरून्धती भी एक विदुषी महिला थी। परमार वंशीय राजा उदयादित्य के झालरापाटन अभिलेख की लेखिका पण्डिता हर्षुका थी। शैव महिला संत लल्ला योगेश्वरी उज्जैन के शैव आश्रम की प्रमुख थी।[59] के.सी. श्रीवास्तव के अनुसार चालुक्यवंशीय रानियां अत्यन्त विदुषी थी। उन्हें रामायण, महाभारत, पुराण, दण्डनीति सहित समस्त शास्त्रों की शिक्षा प्रदान की जाती थी।[60]

10वीं शताब्दी में रन्न, कन्नड़ भाषा एवं साहित्य का प्रसिद्ध कवि था। रन्न, पोन्ना तथा आदिकवि पम्प प्राचीन कन्नड़ साहित्य के त्रिरत्न माने जाते हैं। एक जैन मतानुयायी महिला अत्तिम्बे के संरक्षण में रन्न ने जैन धर्म के द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ के जीवन पर आधारित अजित पुराण की रचना की।[61] रानी अत्तिम्बे ने कवि पोन्न द्वारा विरचित ''शांतिपुराण' की निः शुल्क 1000 प्रतियां वितरित करवाकर कवि को प्रसिद्धि प्रदान की तथा साहित्य का प्रचार प्रसार किया। होयसल के राजा नरसिम्हा द्वितीय की बहन सोवलादेवी ने 1237 ई. में सोमनाथपुरा नामक एक कस्बा बसाया था, जो शीघ्र ही शिक्षा का एक प्रसिद्ध केन्द्र बन गया था।[62] इन महिलाओं ने अपनी उदारता से कवियों और काव्य को संरक्षण प्रदान कर अमरत्व प्राप्त किया। बारहवीं शताब्दी के अंत में भास्कराचार्य ने अपनी पुत्री लीलावती को गणित की शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से 'लीलावती' नामक गणित के ग्रंथ की रचना की।[63]

डॉ. अल्तेकर महोदय के अनुसार, 12वीं शताब्दी ई. के अंत तक समाज में स्त्री–शिक्षा की प्रतिशतता के बारे में अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन है।[64]

संदर्भः–

1. अल्तेकर, अनन्त सदाशिव : 1944, एजुकेशन इन एंशियंट इण्डिया, नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स एजुकेशन पब्लिशर्स, बनारस, द्वितीय संस्करण, पृ. 204–06
2. मुखर्जी, राधा कुमुद : 1958, वुमन इन एन्शियंट इण्डिया, वुमन ऑफ इण्डिया, मिनिस्ट्री ऑफ इन्फोर्मेशन एण्ड ब्रॉडकास्टिंग, पब्लिकेशन डिवीजन, दिल्ली, पृ. 1
3. मुखर्जी, राधा कुमुद : 1947, एन्शियंट इण्डियन एजुकेशन, मैकमिलन एण्ड कम्पनी लिमिटेड, लंदन, पृ. 51
4. शर्मा, डॉ. मालती : 1990, वैदिक संहिताओं में नारी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, पृ. 194
5. गुप्ता, मऊदास : वुमन सीर्स ऑफ द रिग्वेद, डी.के. प्रिंटवर्ल्ड (पी) लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम प्रकाशन (भारत), 2017, पृ. 33–35,
6. वही : वही, पृ. 31
7. कात्यायन : 1886, ऋग्वेद सर्वानुकमाणी, (सं) ए.ए. मैकडॉनल, ऑक्सफॉर्ड
8. बाशम, ए. एल. : 1954, द वंडर दैट वाज इण्डिया, रूपा एण्ड कम्पनी, कलकत्ता, इलाहाबाद, बॉम्बे, नई दिल्ली, प्रथम प्रकाशन, पृ. 179
9. मुखर्जी, राधा कुमुद : वुमन इन एन्शियट इण्डिया, वही, पृ. 2–4
10. मुखर्जी, राधा कुमुद : एंशियंट इण्डियन एजुकेशन, वही, पृ. 51
11. दास, संतोष कुमार : 1930, द एजुकेशनल सिस्टम ऑफ द एंशियंट हिन्दुज, मित्रा प्रेस, कलकत्ता, पृ. 230
12. डॉ. पारीक, अम्बिका : 2009, प्राचीन भारत में नारी, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर (राजस्थान), प्रथम संकरण, द्वितीय संस्करण 2017, पृ. 3,
13. मुखर्जी, राधा कुमुद : वुमन इन एंशियंट इण्डिया, वही, पृ. 6–7
14. ललित विस्तार : 1877, (सं) मित्रा, राजेन्द्रलाल, कलकत्ता, अध्याय ग्ए पृ. 158–159
15. अल्तेकर, ए. एस. : एजुकेशन इन एंशियंट इण्डिया, वही, पृ. 209
16. मिश्र, डॉ. जयशंकर : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ. 552
17. ऐनुअल रिपोर्ट : (1924), ऑफ द मैसूर आर्कियोलॉजिकल डिपार्टमेंट, मैसूर विश्वविद्यालय, बैंगलोर, पृ. 14, 1925 में प्रकाशित
18. तिवारी, अंशुमन एवं अनिन्द्य : 2018, लक्ष्मीनामा : मोंकस, मर्चेन्ट्स, मनी एण्ड मंत्र, सेनगुप्त, ब्लूमसबेरी पब्लिशिंग इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली,
19. काणे, वामन पाण्डुरंग : 1930, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, भण्डारकर ओरियेन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, भाग–1, पृ.11
20. पं. मित्रमिश्र : 1875, वीरमित्रोदय, संस्कारप्रकाशे, (सं) जीवानन्द, कलकत्ता, भाग–2, पृ. 402;

देवनभट्ट : 1914, स्मृतिचन्द्रिका, (सं) एल. श्रीनिवासाचार्य, संस्कार–काण्डः प्रथम, गवर्नमेंट ओरियेन्टल लाईब्रेरी सीरीज, मैसूर, पृ. 62

21. देवन भट्ट : वही;

माधव, पराशर : 1974, पराशर–स्मृतिः, श्रीचन्द्रकांत तर्कालङ्कार परिशोधित, प्रथम भाग–आचारकाण्ड, द एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, पृ. 485

22. अल्तेकर, ए. एस. : एजुकेशन इन ऐन्शियंट इण्डिया, वही, पृ. 207
23. मुखर्जी, राधा कुमुद : वुमन इन एंशियंट इण्डिया, वही, पृ. 4–5
24. दास, संतोष कुमार : वही, पृ. 224–225
25. वही : पृ. 223
26. वही : वही, पृ. 230
27. विन्टरनित्स, एम. : 1927, ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर श्रीमती एस. केतकर के मूल जर्मन से अंग्रेजी अनुवाद, यूनिवर्सिटी ऑफ कलकता, टवसण् ए पृ. 465, 503
28. अल्तेकर, ए. एस. : वही, पृ. 205
29. दास संतोष कुमार : वही. पृ. 231
30. श्रीवास्तव, के.सी. : प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, ग्याहरवीं आवृति, 2011–12, पृ. 107
31. अल्तेकर, ए. एस. : वही, पृ. 206
32. महादेव गंगाधर बाकरे (सं) : 1982, पारस्कर गृहसूत्रम्, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड द्वितीय संस्करण, पृ. 305–2/17, पृ. 346–361–3/8–10
33. अग्रवाल, वासुदेव शरण : 1969, पाणिनीकालीन भारतवर्ष, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, पृ. 102
34. अग्रवाल, वासुदेव शरण : 1953, इण्डिया एज नॉन टू पाणिनी, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, पृ 287–288, 300–301
35. बूहलर, जी (अुनवादक) : 1886, द लॉज ऑफ मनु, द सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट सीरीज, मेक्समूलर, टवसण् ग्टए ऑक्सफोर्ड, पृ 42
36. विधारण्य, श्रीचन्द्र (अनुवादक) : 1918, याजनवल्क्य स्मृति, मिताक्षरा, पुस्तक–1, आचार अध्याय, इलाहाबाद, पृ. 54–2/13
37. दास, संतोष कुमार : वही, पृ. 234
38. अल्तेकर, ए. एस. : वही, पृ. 220, पाद टिप्पणी 1
39. कानन, सुशुमन : जून 2013, ऑन द स्त्री धर्म पद्धति ऑफ त्रयम्बकयज्वन, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशियल साइन्सेज एण्ड ह्यूमेनिटीज, टवसण् 2ए प्नेम 1ए पृ. 78, प्छरू 2277.7997
40. दास, संतोष कुमार : वही, पृ. 235–236
41. वही, : वही, पृ. 239–244
42. अल्तेकर, ए. एस. : एजुकेशन इन एंशियंट इण्डिया, वही, पृ. 219
43. पद्म पुराण : 1950, श्री रविषेणाचार्य विरचित, हिन्दी भाषाकार स्व. पं. दौलतराम जी, (सं) हीरालाल सिद्वांत–शास्त्री, वीर–सेवा मंदिर सस्ती ग्रंथमाला, दरियागंज, दिल्ली, पृ. 251
44. हरिवंशपुराण : 1978, श्रीमज्जिनसेनाचार्यप्रणीत, सम्पादक अनुवादक डॉ. पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, 9/24, पृ. 167
45. अल्तेकर, ए. एस. : वही, पृ. 218
46. ली, हुई : 1914, द लाइफ ऑफ ह्वेनसांग, (सं) सेम्युअल बील, लंदन, बुक–5, पृ. 176
47. ओझा, गौरीशंकर हीराचंद : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति (600 ई.–1200ई.), हिन्दुस्तानी अकादमी, संयुक्त प्रदेश, प्रयाग, 1928, पृ. 65–66

48. दण्डी : 1822, दशकुमारचरित, (सं) मोरेश्वर रामचन्द्र काले, बम्बई, शकाब्दाः (1900 ई.), द्वितीय उच्छवास, पृ. 66–67

49. शर्मा, दशरथ : 1959, अर्ली चौहान डायने स्टीज, एस. चंद एण्ड कम्पनी, दिल्ली, जालंधर, लखनऊ, पृ. 255

50. राजशेखर : 1955, कर्पूरमंजरी, (सं) श्री रामकुमार आचार्य, चौखम्बा विद्या भवन, बनारस, प्रस्तावना, पृ. 5–6

51. ओझा, हीराचंद गौरीशंकर : वही, पृ. 65–66

52. कविवर मोहन सिंह : विक्रम संवत 2012, समय 42, पृथ्वीराज रासौ, भाग–3, साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, प्रथम संस्करण, दोहा–17, पृ. 221

53. वही, : दोहा 47–48, पृ. 234

54. जायसी, मलिक मुहम्मद : अप्रैल 1959, चित्ररेखा, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण,, पृ. 81

55. श्रीमच्छंकर दिग्विजय : 1812, श्रीविद्यारण्यस्वामी, (संशोधन), चिमणाजी आपटे, आनन्दाश्रम संस्कृतग्रन्थावलि, ग्रन्थांक–22, शालिवाहनशकाब्दाः पृ. 310, 8/51

56. शर्मा, दशरथ : अर्ली चौहान डायनेस्टी, पृ. 290, 255

57. जैन, डॉ. प्रेम सुमन : 1975, कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, प्राकृत जैन शाखा एवं अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली, बिहार,, पृ. 229

58. नदबी, सुलेमान सैयद : 1929, अरब और भारत के संबंध, द हिन्दुस्तान अकादमी, यू.पी., इलाहाबाद, पृ. 122

59. व्यास, डॉ. श्याम प्रसाद : 1986, राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन (700 ई.–1200 ई.), राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, पृ. 122

60. श्रीवास्तव, के.सी. : वही, पृ. 680

61. शास्त्री, नीलकण्ड के. ए. : 2002, द्वितीय संस्करण, ए हिस्ट्री ऑफ साउथ इण्डियाः फॉम प्रि–हिस्टोरिक टाईम्स टू द फॉल ऑफ विजयनगर, नई दिल्ली, इण्डियन ब्रांच, ऑक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 356,

62. राइस, लेविस बी. : 1902, एपिग्राफिया कर्नाटिका, टवसण टए (भाग–2), मंगलौर, पृ. 107 (123)

63. ओझा, हीराचंद, गौरीशंकर : वही, पृ. 66

64. अल्तेकर, ए. एस. : वही, पृ. 220